ऊर्जा का उत्पादन ही नहीं, संरक्षण भी ज़रूरी

के. जयलक्ष्मी

अंतर्राष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी (आईईए) द्वारा 2010 में जारी वार्षिक 'वर्ल्ड एनर्जी आउटलुक' रिपोर्ट के अनुसार दुनिया में ऊर्जा की खपत में तेल, कोयला और प्राकृतिक गैस का ही प्रभुत्व बना रहेगा। यह अलग बात है कि साथ ही हम हरित नीतियां अपनाते रहेंगे और वातावरण में कार्बन की मात्रा 450 पीपीएम से नीचे रखने के प्रयास करते रहेंगे ताकि इस दशक में तापमान में बढ़ोतरी 2 डिग्री सेल्सियस से ज़्यादा न हो।

एजेंसी का अनुमान है कि दुनिया की ऊर्जा खपत में तेज़ी से बढ़ोतरी होगी। इस अतिरिक्त मांग में एक बड़ा हिस्सा लगातार आगे बढ़ रहे विकासशील देशों का होगा। जीवाश्म ईंधनों में भी प्राकृतिक गैस पर निर्भरता बढ़ेगी। वर्ष 2035 तक इसमें 44 फीसदी तक की बढ़ोतरी हो जाएगी। इस बढ़ोतरी में एक तिहाई से भी ज़्यादा हिस्सा 'अपारंपरिक' गैसों (शेल) का होगा। हालांकि आईईए के अनुसार तेल और कोयले की सबसे ज़्यादा मांग चीन, भारत और अन्य विकासशील देशों में पैदा होगी। एजेंसी ने एक बार फिर उन प्रयासों पर ज़ोर दिया है जिनसे तापमान में बढ़ोतरी वर्ष 2035 तक 2 डिग्री सेल्सियस तक नियंत्रित रहे। इसके लिए कार्बन के उत्सर्जन में चीन को 32 फीसदी और अमरीका को 18 फीसदी तक की कमी करनी होगी।

चीज़ें वाकई उतनी तेज़ी से नहीं बदल रहीं। डार्विन ने जो कहा था, उसे याद कीजिएः 'बुद्धिमान या ताकतवर प्राणी नहीं, बल्कि हालात के अनुसार अपने को अनुकूल बना लेने वाले प्राणियों का ही अस्तित्व बच सकेगा।' लेकिन हम मनुष्य परिवर्तनों का लगातार विरोध करते आ रहे हैं। इसका नतीजा क्या निकलेगा, अनुमान खुद लगा लीजिए।

क्या हम हरित ऊर्जा की ओर बढ़ रहे हैं? और उन वायदों का क्या होगा जो ऊर्जा की मांग और पूर्ति के बीच की खाई को पाटने के लिए किए गए हैं? आज यह साफ है कि दुनिया में ऊर्जा की मौजूदा स्थिति टिकाऊ नहीं है। आज आर्थिक विकास की दर को बनाए रखने के लिए जितनी मात्रा में और गुणवत्ता वाली ऊर्जा चाहिए, वह न तो पारंपरिक जीवाश्म ईंधन के स्रोतों से हासिल हो सकती है और न ही ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों से।

उद्योगों को आज जितनी ऊर्जा चाहिए, यदि उसी स्तर पर ऊर्जा की उपलब्धता पारंपरिक स्रोतों के स्थान पर वैकल्पिक स्रोतों से सुनिश्चित की जानी है तो इसके लिए तीन बातों की ज़रूरत होगी - एक, व्यवहार में जितना संभव है, उससे कहीं ज्यादा वित्तीय निवेश। दो, अधिक समय (जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में कहें तो बहुत अधिक समय)। तीन, ऊर्जा की गुणवत्ता और विश्वसनीयता। लेकिन क्या यही काफी होगा? बिलकुल नहीं।

पोस्ट कॉबर्न इंस्टीट्यूट के सीनियर फेलो रिचर्ड हेनबर्ग ने 'चमत्कार की खोज' नामक एक रिपोर्ट लिखी है। यह उसी मूलभूत सवाल का जवाब तलाशने की कोशिश करती है कि क्या ऊर्जा के ज्ञात स्रोतों का कोई भी सम्मिश्रण कम से कम वर्ष 2100 तक समाज की ऊर्जा ज़रूरतों की पूर्ति करने में सक्षम है? जैसा कि विहंगावलोकन खंड में हेनबर्ग ने लिखा है, 'इस रिपोर्ट का चिंताजनक निष्कर्ष यह है कि न तो पारंपरिक जीवाश्म ईंधन और न ही वैकल्पिक ईंधन के स्रोत इतनी मात्रा में गुणवत्तापूर्ण ऊर्जा प्रदान कर सकते हैं जो इस सदी में आर्थिक विकास अथवा मौजूदा आर्थिक गतिविधियों को बनाए रखने के लिए ज़रूरी है।'

इसका मतलब यही है कि संक्रमण काल में किसी भी तर्कसंगत ऊर्जा योजना में ऊर्जा के संरक्षण पर सबसे ज़्यादा ज़ोर देना होगा। यह टिकाऊ विकास को लेकर भी सवाल खड़े करता है।

आधुनिक औद्योगिक समाजों के ऊर्जा ढांचे को बदलना इतना आसान काम नहीं है। व्यापक पैमाने पर होने वाले इस संक्रमणकालीन बदलाव के दौर में थोड़ा-सा भी कुप्रबंधन पूरी अर्थव्यवस्था को चौपट कर सकता है। गुणवत्ता वाली ऊर्जा की पर्याप्त आपूर्ति में विफलता भविष्य में मानवता के कल्याण को नुकसान पहुंचा सकती है। लेकिन इस संक्रमण काल के शीघ्र प्रबंधन में विफलता धरती के अति महत्त्वपूर्ण इकोसिस्टम को ही खतरे में डाल सकती है। यानी एक तरफ कुआं है तो दूसरी ओर खाई।

विशेषज्ञों का कहना है कि संक्रमणकाल से निपटने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में हरित ऊर्जा और प्रौद्योगिकी है, ज़रूरत केवल निवेश की है। लेकिन इस आत्मविश्वास पर ही संदेह है। जर्नल *बायोसाइंस* में हाल ही में एक अध्ययन प्रकाशित हुआ है। इसके अनुसार मौजूदा अमरीकी जीवन-शैली के पैमाने पर देखें तो 2050 में दुनिया की आबादी को आज की तुलना में 16 गुना अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होगी। आज मनुष्य की 85 फीसदी ऊर्जा ज़रूरत की पूर्ति जीवाश्म ईंधन से होती है। ऐसे में वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों के विकास के जो प्रयास किए जा रहे हैं, वे कमज़ोर प्रतिफल के कारण गंभीर आर्थिक संकट में फंस जाएंगे। इस तरह वे उन कई अर्थशास्त्रियों के इस विचार को खारिज कर देते हैं कि प्रौद्योगिकीय आविष्कार ऊर्जा स्रोतों की कमी को पूरा कर सकते हैं।

यही नहीं, प्रत्येक ऊर्जा स्रोत की अपनी विशेषताएं होती हैं। तेल, कोयला और प्राकृतिक गैस में मौजूद उच्च ऊर्जा घनत्व की वजह से अत्यंत गतिशील और बड़ी आबादी वाले आधुनिक समाज का निर्माण संभव हो सका, साथ ही उच्च आर्थिक विकास दर भी सुनिश्चित हो सकी। वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत इसका मुकाबला शायद ही कर सकें।

हरित परिदृश्य की ओर प्रस्थान करने की सामर्थ्य आज के आधुनिक समाजों में शायद ही हो। हालांकि इसके कुछ दुर्लभ अपवाद भी हैं। एक है स्वीडन। यह अपनी ऊर्जा ज़रूरतों के एक बड़े हिस्से की पूर्ति परमाणु और पनबिजली स्रोतों से करता है। दूसरा उदाहरण आइसलैंड का है जो अपने घरेलू जियोथर्मल स्रोतों से ऊर्जा हासिल करता है। अधिकांश देशों में ऊर्जा के ये स्रोत ही नहीं पाए जाते। लेकिन इन दो मामलों में भी विशेषज्ञों का कहना है कि स्थिति कहीं अधिक जटिल है। इन ऊर्जा संयंत्रों के लिए भी जो बुनियादी ढांचा तैयार किया जाता है, उसके लिए जीवाश्म ईंधन ही काम आता है। उदाहरण के लिए लौह अयस्क व कच्ची सामग्री और युरेनियम का खनन, सामग्री की प्रोसेसिंग, परिवहन, विभिन्न कलपुर्जों का निर्माण इत्यादि ऐसे कार्य हैं जो जीवाश्म ईंधन के इस्तेमाल के बगैर संभव ही नहीं है।

यह तय है कि पिछली सदी में औद्योगिक समाजों को ऊर्जा प्रदान करने की जितनी लागत आई है, आने वाले समय में इसमें भारी बढ़ोतरी होगी, फिर भले ही ऊर्जा के स्रोत पारंपरिक हों या वैकल्पिक।

ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों की ओर प्रस्थान ज़रूर करना चाहिए, लेकिन उनका चयन सुविचारित अध्ययन के बाद ही किया जाना चाहिए। ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों की ओर बढ़ने के लिए एक सुव्यवस्थित योजना बनानी होगी और इसके लिए वित्तीय व्यवस्था भी करनी होगी।

एक बेहद अहम कसौटी है जिसकी अक्सर उपेक्षा की जाती है और वह है नेट ऊर्जा। नेट ऊर्जा का मतलब यह है कि ऊर्जा के उत्पादन में जितनी ऊर्जा खर्च कर रहे हैं, उसके बदले में कितनी ऊर्जा मिल रही है। इसे इस तरह से देखा जाता है कि ऊर्जा प्रणाली को विकसित करने और उसे चलाने के लिए जितनी ऊर्जा की ज़रूरत होती है, उसके मुकाबले कितना अतिरिक्त उत्पादन होता है। यानी ऊर्जा उत्पादन के दौरान ऊर्जा की खपत और उत्पादन का अनुपात क्या है? ***(स्रोत फीचर्स)***